रेवती

जब भूखे साँप की तरह आहिस्ते-आहिस्ते सरकती हुई पैंसेंजर ट्रेन आकर प्लेटफॉर्म पर रुकी, सान्ध्य-तारा आकाश में निकल आया था।

जंगल में आग लगने पर पेड़ों पर बैठे हुए पक्षी जिस प्रकार उड़-उड़कर चहचहाने लगते हैं, उसी प्रकार कम्पार्टमेन्ट से यात्री उतर-उतर कर प्लेटफॉर्म पर शोरगुल करने लगे। यद्यपि यह अन्तिम स्टेशन था, फिर भी यात्रियों को उतरने की हड़बड़ी लगी हुई थी। उन्हीं यात्रियों में जेनरल कम्पार्टमेंट की भीड़ को चीरता हुआ एक देहाती किस्म का आदमी उतरा, जिसके साथ एक किशोरी भी थी।

उस लड़की ने शायद इससे पहले रेलगाड़ी में सफर नहीं किया था। इतने बड़े शहर के भीड़-भाड़ से भरे प्लेटफॉर्म को तो उसने कभी स्वप्न में भी नहीं देखा था। इतने सारे अपरिचित लोगों के बीच उसे बड़ा अजीब-अजीब-सा लग रहा था। अपने बाबा के हाथ को कसकर दबाते हुए उसने फुसफुसाकर कहा—"बाबा! मुझे पेशाब करना है।"

"अभी तो थोड़ी देर पहले गई थी। फिर कैसे लग गया?"—उसके बाप ने भी धीमी आवाज में ही पूछा।

"गई तो थी, लेकिन हुआ नहीं।"

"ठीक है, प्लेटफॉर्म से बाहर निकलने पर देखते हैं। यहाँ तो चारों ओर आदमी पर आदमी चढ़े जा रहे हैं।"

प्लेटफॉर्म से निकलने के पहले उसने अपनी धोती कमर से कसकर बाँधी, कमीज के बटन खोल दिए और गमछे से पसीना पोंछते हुए कहा—"ओफ्फ साला कितनी गरमी है कलकत्ता में।"....

स्टेशन से बाहर निकने के बाद थोड़ी खुली हवा देह में लगी तो गरमी से राहत मिली। लकड़ी के केबिन के पीछे बैठकर आने के बाद लड़की का मन भी

हल्का लगने लगा। उसने चलते-चलते पूछा—"बाबा! कलकत्ता में तो एक बहुत बड़ा चिड़ियाघर है न?"

"हाँ, है तो! और भी बहुत कुछ है। हावड़ा ब्रिज है, हवाई जहाज है, ट्राम है, बड़े-बड़े मकान हैं, काली मंदिर है और न जाने क्या-क्या देखने के लिए है? समय मिला तो सब देखना।"

"बाबा, हावड़ा ब्रिज क्या है?"

"अरे, वह सामने हुगली नदी पर जो पुल दिखलाई पड़ रहा है न, उसी को लोग हावड़ा ब्रिज कहते हैं। उसी पर होकर तो हमलोग जाएँगे।"

"आप तो कह रहे थे ट्राम में चढ़कर जाएँगे। यह ट्राम क्या है बाबा?"—लड़की की जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी।

उसके बाबा ट्राम के बारे में कुछ बताते कि उससे पहले टन-टन की घण्टी बजाती हुई एक ट्राम गाड़ी हावड़ा ब्रिज की ओर निकल गई।

"इस्स इतनी लम्बी दो मंजिला बस! हमारे यहाँ तो ऐसी चीजें नहीं होती हैं न बाबा!"

उसकी बातें सुनकर उसके बाबा हँसने लगे। कैसी मूर्ख लड़की है? कहाँ कलकत्ता और कहाँ कालाहांडी जिला का एक अदना-सा गाँव सुरुंगीपद। वहाँ से आनेवाली इस लड़की को इस शहर में कितनी अनजानी चीजें मिलेंगी, इसे क्या पता? अगर उन आश्चर्यजनक चीजों की सूची बनाई जाए तो बड़ी लम्बी हो जाएगी—बिल्कुल हावड़ा स्टेशन के विशाल प्लेटफॉर्म की तरह।

"बाबा, बड़ी भूख लगी है।"—सामनेवाली मिठाई की दुकान की ओर ललचाई दृष्टि से देखते हुए उसने कहा।

"भूख! अरे, अभी कुछ देर पहले ही तो तूने आठ आने की मूढ़ी खाई थी न! फिर भूख लग गई? ठहर देखते हैं।"

उसने कमीज की जेब से हाथ डालकर टटोलते हुए कहा—"इधर आ।"

उसने ढाई रुपए जेब से निकाल कर एक संदेश और एक समोसा कागज की पुड़िया में लड़की को थमाते हुए कहा—"ले खा।"

लड़की ने पुड़िया पकड़ते ही संदेश को दो कौर में ही समाप्त कर दिया। समोसा खाने ही जा रही थी कि उसे ख्याल आया कि बाबा भी तो भूखे हैं, सुबह से अब तक कुछ भी मुँह में नहीं डाला है। उसने पूछा—"बाबा, तुम्हें भी तो भूख लगी होगी?"

बाबा के कुछ कहने के पहले उसने समोसे के दो टुकड़े किए और बड़ा वाला टुकड़ा बाबा की ओर बढ़ा दिया। छोटा टुकड़ा अपने मुँह में रखते हुए उसने कहा—"बाबा, अच्छा लग रहा है न?'

उसके बाबा ने कुछ नहीं कहा। अपने हाथ के टीन के बक्से को वहीं रखकर उसने पानी पीया और लड़की के हाथ का बैग हाथ में लेकर कहा—"जा, तू भी

पानी पी ले।"

बक्से में लड़की के कुछ कपड़े थे और बैग में उसकी एक धोती थी। बक्से का वजन बहुत कम था। बस एक-दो फ्रॉक, उसकी माँ की एकाध पुरानी साड़ी और एक छोटा-सा रबड़ का खिलौना, जिसे उसने चार साल पहले भवानीपटना की हाट से खरीदा था।

दरअसल वह खिलौना भी उसके लिए नहीं खरीदा गया था; उसके छोटे भाई के लिए लाया गया था। अचानक उसके भाई को न जाने कौन-सी बीमारी हो गई कि लाख झाड़-फूँक करने के बावजूद साल भर भी नहीं बचा।

अपने भाई के मरने के बाद उसने वह खिलौना अपने अधिकार में कर लिया था। ऐसा करते समय उसे खुशी हुई थी अथवा दुःख, इसे कोई नहीं समझ सका। उसके कुछ दिन बाद ही उसकी माँ को साँझ के समय जंगल की ओर जाने पर एक भालू ने काट-काट कर लहूलुहान कर दिया था। गाँव के लोगों ने उस जंगली भालू से तो उसे बचा लिया, किन्तु शरीर पर जो घाव लगे थे, उसके दर्द को वह बर्दाश्त नहीं कर सकी। कुछ ही दिनों में मर गई।

माँ के मरने के बाद जब वह बेतरह रोने लगी थी तो उसके बाबा ने समझाते हुए कहा था—"रेवती, माँ मर गई तो अच्छा ही हुआ। उसके शरीर पर कितने बड़े-बड़े घाव हो गए थे। वह दर्द से हमेशा कराहती रहती थी। कितनी तकलीफ थी उसे! मर गई तो उस पीड़ा से तो मुक्ति मिल गई उसे। अब वह आसमान में तारा बनकर सुख से रह रही होगी। और वहाँ से रोज हमलोगों को देखती होगी।"

रेवती शाम होते ही उन तारों के बीच अपनी माँ को पहचानने की कोशिश करती। कभी किसी तारे को देखकर हँस पड़ती तो कभी रो उठती। उसका यह हँसना अथवा रोना सबकी समझ के परे था।....

"अरे मूर्ख लड़की, देखकर रास्ता चल। यह कलकत्ता शहर है। अभी गाड़ी तुझे धक्का मार देती। वह तो मैंने देख लिया नहीं तो न जाने क्या हो जाता।"—रेवती को अपनी ओर खींचते हुए उसके बाबा चिल्ला उठे थे। रेवती कुछ समझ नहीं सकी। इतने शोर-शराबे में उसे बाबा की सारी बातें ठीक से सुनाई भी नहीं पड़ रही थी।

"बाबा,क्या हम पैदल ही चलेंगे? ट्राम पर नहीं चढ़ेंगे?"—रेवती ने पूछा।

"नहीं रे, बहुत दूर जाना है। इसलिए पैछल चलना सम्भव नहीं होगा। एक काम कर! तू यहीं ठहर! मैं ट्राम या बस का पता लगाकर आता हूँ। इधर-उधर मत जाना। यहीं पर रहना। मैं अभी आया, समझी।"

रेवती का बाप उससे पहले भी एकबार कलकत्ता आया था। इसलिए उसे शहर के बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी थी। उसने आधी हिन्दी और आधी ओड़िया कहकर आखिर सतीनाथ लेन तक जानेवाली बस का पता लगा ही लिया।

सतीनाथ लेन जानेवाली बस का पता लगाने में उसे मात्र पच्चीस मिनट लगे।

इस शहर में लाखों मकान हैं, हजारों-हजार गलियाँ हैं; इनमें सतीनाथ लेन कहाँ है, यह कितने लोगों को मालूम है? आधे लोग तो उसके इस प्रश्न को सुनने के लिए ही तैयार नहीं थे। और जिन्होंने सुनने की कृपा की उनमें से अधिकाँश उस लेन का नाम पहली बार सुन रहे थे। फिर भी, एकाध आदमी ऐसा मिल ही गया जिसने उस ओर जानेवाली बस का नम्बर बता दिया।

वह चार बसों के नाम और तीन बसों के नम्बर को रटता-रटता रेवती के पास पहुँचा। रास्ते के किनारे खड़ी रेवती अपनी बड़ी-बड़ी आँखें फाड़कर चारों ओर देख रही थी। एक-एक मिनट की देर उसकी घबड़ाहट को दुगुनी कर रही थी। जब उसने बाबा को दूर से अपनी ओर आते देखा तो उसकी जान में जान आई।...

सतीनाथ लेन के माखनलाल चौधुरी से उसकी पहली मुलाकात केसिंगा रेलवे स्टेशन पर हुई थी। बीड़ी का धुआँ भस्स-भस्स छोड़ते हुए हिन्दी और बंगला की मिली जुली भाषा में माखनलाल ने उसे समझाया था—"देख वनवासी, बताए हुए एड्रेस पर पहुँचने में तुझे कोई असुविधा होने की गुंजाइश नहीं है। टैक्सी से जाने पर एक सौ दस टाका लग जाएगा और अगर बस से गया तो सिर्फ आठ टाका लगेगा। तुझे हम एक सौ दस टाका देता हूँ, तू जिससे मर्जी आ सकता है। बस पता याद रखना-अठहत्तर बी, सतीनाथ लेन।"

बनवासी ने नम्बर तो लिखकर रख लिया था, गली का नाम "सतीनाथ लेन" उसकी जुबान पर चढ़ गया। पहले कलकत्ता आ चुका था, इसीलिए अपनी बेटी को लेकर आने का साहस जुटा पाया। अब टैक्सीवाले को बेकार में इतने पैसे क्यों दे, यह सोच कर उसने आठ-आठ रुपए देकर बस में जाने का ही निश्चय किया। शाम होने लगी थी। अब जल्दी बस आ जाए तो नम्बर पढ़ने में आसानी होगी, बाद में तो नम्बर पढ़ना भी मुश्किल हो जाएगा।

खैर, बस जल्दी ही आ गई। धक्का-धुक्की करके दोनों बस में धुस तो गए किन्तु अन्दर बैठने की कहीं जगह नहीं थी। बहुत देर तक खड़ा-खड़ा सफर करना पड़ा। उस बस से उतर कर जब दूसरी बस पकड़ी तो उसमें भीड़ थोड़ी कम थी। रेवती को खिड़की के पास वाली सीट मिल गई। वहाँ बैठकर उसने बाहर का नजारा देखा। वह मन ही मन सोचने लगी—कलकत्ता बड़ा चित्रित्र शहर है। कितने सारे लोग, कितनी सारी गाड़ियाँ, कितनी बड़ी-बड़ी इमारतें और उनमें जगमगाती हुई रंग-बिरंगी कितनी सारी बत्तियाँ। खिड़की से फुर-फुर हवा आ रही थी। उसे थोड़ी राहत मिली। चारों ओर मनुष्यों की अपार भीड़ देखकर उसके मुख से निकला—"बाबा, इस दुनिया में कितने आदमी हैं!"

बनवासी ने रेवती के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, बल्कि बस के सहयात्रियों से गपशप करने में मशगूल रहे। बातचीत करने से आपसी पहचन मजबूत होती है। कुछ दिशा-संकेत मिलते है; और कुछ जानकारी भी प्राप्त होती है। यात्रा में सुरक्षा

का अहसास होने लगता है। लेकिन उसके साथ भाषा की बड़ी कठिन समस्या थी—न वह हिन्दी ठीक से बोल पाता था और न बंगला। वह जो भाषा अच्छी तरह बोल पाता था, उसको समझने वाले वहाँ नहीं थे। इसके अलावा सभी दिन भर के थके-माँदे घर लौटने की चिन्ता में थे, इसलिए किसी में बातचीत करने का विशेष उत्साह दिखलाई नहीं पड़ रहा था। पिछली बार जब वह कलकत्ता आया था, अकेला नहीं था। उसके साथ कालाहांडी और कंधमाल के चार-पाँच आदमी थे। कलकत्ता के जूट मिल अथवा पानी जहाज में काम मिलने की उम्मीद लेकर ही वे लोग वहाँ गए थे।

उस बार उन लोगों को निराशा ही हाथ लगी थी। क्योंकि किसी से कोई जान-पहचान नहीं थी। और आज के जमाने में बिना सिफारिश के नौकरी नहीं मिलती। जादूघर, हुगली नदी और कलकत्ता के हाट-बाजार घूम-घामकर वे लोग गाँव लौट गए थे। बेकार में ही बहुत सारे पैसे खर्च हो गए थे।

रेवती की माँ ने वनवासी से कहा भी था—"एक बार और जाओ! फिर से कोशिश करो। इतनी जल्दी थक जाने से कैसे होगा? घर में आठ-आठ प्राणी हैं, बिना कुछ किए-धिए कैसे चलेगा? पेट भरने के लिए अनाज कहाँ से आएँगे? यहाँ तो कोई काम धाम भी नहीं है।"

अब केवल छह प्राणी रह गए थे—माँ, बाप, दो जवान लड़के, रेवती और वह स्वयं।

बड़ा लड़का बीस साल का था और छोटा पन्द्रह का, लेकिन दोनों किसी काम के नहीं थे। दिन भर मटरगश्ती करना, गाली-गलौज करना और यहाँ-वहाँ अड्डा बाजी करना ही उन दोनों की दिनचर्या थी।

रेवती शान्त और सरल स्वभाव की थी। उसे पढ़ने की बड़ी इच्छा थी, किन्तु गाँव के स्कूल में मास्टर ही नहीं रहते, तो बच्चों की पढ़ाई कैसे पूरी हो? एक मास्टर जी थे जो छुट्टी लेकर अपने घर गए तो फिर लौटे ही नहीं। अब तो दो साल से अधिक हो गए। उनके जाने के बाद स्कूल में जो ताला पड़ा तो कोई दूसरा मास्टर फिर कभी खोलने नहीं आया।

वनवासी को याद आया कि रेवती की माँ जब चार महीने तक दर्द से छटपटाती रही थी तो उसके इलाज में हजारों रुपए खर्च हो गए थे। कर्ज अभी तक सिर पर चढ़ा हुआ है। आधी से अधिक जमीन बेचनी पड़ी, फिर भी वह उसे बचा नहीं पाया। यद्यपि रेवती की माँ जमीन बेचने के पक्ष में नहीं थी, किन्तु वनवासी उसे इस तरह दर्द से छटपटाते तो नहीं छोड़ सकता था।

हठात् उसे रेवती की माँ का वह चेहरा याद हो आया जब वह नीचे चटाई पर पड़ी हुई दर्द से छटपटा रही थी, घावों से खून और मवाद रिस रहे थे, फिर भी वह अपने पति से विनती कर रही थी—"देखो, जमीन मत बेचो। तुम क्या सोचते हो कि दवा-दारू करने से मैं बच जाऊँगी? मेरे शरीर में तो जहर फैल गया है।

अब और कुछ नहीं हो सकता। बेकार में पैसे बर्बाद मत करो। जमीन बेच देने से बाद में बच्चे भूखों मर जाएँगे। तुम इनका पेट कैसे भरोगे?"

लेकिन वनवासी ने पत्नी की बात नहीं मानी थी। जमीन बेचकर भी उसका इलाज कराया था। फिर भी रेवती की माँ को नहीं बचा सका था।

रेवती की माँ के मरने के कुछ दिनों बाद चारों ओर यह चर्चा होने लगी थी कि सरकार इस इलाके के जंगल को साफ करके एक कारखाना बनाएगी। केसिंगा के हजारों लोगों को उस कारखाने में नौकरी मिलेगी। उस अंचल के गरीबों पर इतने दिनों बाद सरकार की दृष्टि पड़ी है, यह सोचकर सभी खुश थे।

"कौन-सा कारखाना बनेगा? किस चीज का कारखाना??"—चारों ओर ऐसे ही सवाल हरेक की जुबान पर चढ़े हुए थे।

"फिनिंग मिल। केसिंगा में एक फिनिंग मिल बैठेगा।"—एक जानकार व्यक्ति ने बताया था।

"यह कौन-सा मिल है? इसमें क्या भीतर जाता है और क्या बाहर आता है?"

उस व्यक्ति ने लोगों को समझाया कि इस मिल में रूई डाली जाती है और भीतर से अपने आप धागा बाहर निकल आता है। भुवनेश्वर के बाबू लाग इसे फिनिंग मिल कहते हैं।

कुछ ही दिनों के बाद भुवनेश्वर से कुछ लोग आए। पहले जमीन का नाप-जोख हुआ। एरिया तय किया गया। और फिर देखते ही देखते ट्रकों पर बालू, सिमेंट, छड़ आदि आने लगे। ठेकेदार के आते ही दिन-रात काम शुरू हो गया। रात को तेज रोशनी का इन्तजाम किया गया ताकि काम चौबीसों घण्टे चलता रहे।

लोगों में यह चर्चा थी कि कारखाने के लिए जिसकी-जिसकी जमीन ली गई है, उन्हें नौकरी दी जाएगी। एक दिन एक व्यक्ति ने उससे भी कहा था—"वनवासी, कारखाना तैयार करने में तुम्हारी भी तो कुछ जमीन ली गई है न?"

"मेरी जमीन!"—वनवासी को उस व्यक्ति की बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। "अरे, इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है? कारखाने में काम करने वाले बाबुओं और मजदूरों के रहने के लिए जो मकान बनाए जा रहे हैं, उसके लिए भी तो काफी जमीन चाहिए। चिन्ता मत कर। तुम्हारी जमीन की भी सरकार को जरुरत पड़ेगी और जब वे लोग तुम्हारी जमीन लेंगे तो तुम्हें नौकरी भी जरूर देंगे।"

"मुझे इस मिल में कौन-सा काम मिलेगा?"—वनवासी ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

वह व्यक्ति वनवासी के इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका था। लेकिन उसने मन ही मन तय किया कि उसे जैसा भी काम मिले, वह करेगा—अभी भी उसके हाथ-पाँव में काफी दम-खम है।

लेकिन उस दिन लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जहाँ कारखाना बनने वाला

था, वहाँ बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी हो गईं। बाबू लोगों के रहने के लिए सुन्दर-सुन्दर बँगले तैयार हो गए। अफवाह उड़ाई गई कि इन मकानों को बनवाने के बाद सरकार के पास इतने पैसे ही नहीं बचे कि फिनिंग मिल का निर्माण कार्य पूरा कर सके। बड़ी-बड़ी मशीनों को खरीदने में भी तो काफी पैसों की जरुरत होगी।

एक दिन वनवासी ने एक बाबू किस्म के आदमी से पूछा—"अब क्या होगा? जब कारखाना ही नहीं बनेगा तो इन इमारतों में कौन रहेंगे? हम लोगों की नौकरी का क्या होगा?"

"होगा क्या? ये सारे मकान बेच दिए जाएँगे। हो सकता है बाद में इनमें से ही कोई फिनिंग मिल बैठाने का काम शुरू कर दें। तुम्हारे लिए चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। जो भी मिल बैठाए या कारखाना बनवाए, तुम्हारी नौकरी पक्की है।".....

अचानक बस के अन्दर खलबली मच गई। वनवासी सोच की दुनिया से वापस आकर वस्तुस्थिति को समझने का प्रयास करने लगा। बस रुक गई। लोग चिल्लाने लगे—"मोरे गेछे.....एकदम मोरे गेछे मानुषटा। आर बाँचते पारे ना। (मर गया... .बिल्कुल मर गया बेचारा और बच नहीं सकता)।"

लोग धड़ाधड़ नीचे उतरकर देखने के लिए भागे। वनवासी ने पासवाले यात्री से पूछा—"क्या हुआ दादा? क्या हुआ? कोई मर गया क्या?"

किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। उसके प्रश्न उस कोलाहल में वहीं सिमट कर रह गए। फिर भी लोगों की बातचीत से उसे पता चल गया कि बस के नीचे दबकर एक राहगीर की मौत हो गई हैं वह इस कदर कुचला जा चुका था कि कोई नहीं जान पा रहा था कि वह कोई भिखारी था, गरीब आदमी था अथवा नौकरी की तलाश में दर-दर की ठोकरें खाने वाला कोई बेकार युवक।

शायद किसी को इसे जानने की भी कोई विशेष आवश्यकता महसूस नहीं हो रही थी। उस ओर जानेवाली दूसरी बस आते ही सभी यात्री जल्दी-जल्दी उतर कर उस पर चढ़ गए। उस धक्का-मुक्की में सबसे पीछे उतरने वाली रेवती ही थी। वह बहुत डर-सी गई थी। इसलिए वनवासी उसे छोड़कर मरे हुए व्यक्ति को एक नजर झाँकने के लिए भी नहीं जा सका था।

किस्मत अच्छी थी जो सबसे बाद में उतरने के बावजूद दूसरी बस में उसे बैठने की जगह मिल गई। रेवती ने बैठते ही धीरे से कहा—"बाबा, मुझे बड़ा डर लग रहा है।"

"क्यों? डर क्यों लग रहा है? क्या तुम समझती हो कि यहाँ के बस वाले इसी तरह दिन-दहाड़े लोगों को कुचल डालते हैं। नहीं बेटी, वह जरूर नशे में धुत्त होगा या फिर..... ।"

"नहीं बाबा, मैं उस आदमी की बात नहीं कर रही, अपनी बात कर रही हूँ।

मैं इस बात से डर रही हूँ कि वे लोग मुझे जो करने कहेंगे, मैं कर पाऊँगी तो? अगर नहीं कर पाई तो??"

"अरे, तू खा-मखाह डर रही है। माखनलाल बड़ा अच्छा आदमी है।" उसने कहा था—"नाच नहीं आने से भी चलेगा। हमलोग सिखा देंगे। सीखने के बाद कलकत्ता के बड़े-बड़े मंच पर नाचेगी, नाटक में एक्टिंग करेगी, डायलॉग बोलेगी। हाँ, नाच सीखते वक्त खा-पीकर सौ रुपए मिलेंगे और जब ट्रेनिंग का समय समाप्त हो जाएगा तो हर महीने पन्द्रह सौ रुपए मिलेंगे।"

जिस समय माखनलाल चौधुरी ने वनवासी को यह सब्जबाग दिखाया था, उसकी आँखें फटी की फटी रह गई थी—इतने सारे पैसे!

वनवासी को इस बात का विश्वास दिलाने के लिए माखनलाल ने अपनी जेब से निकालकर तुरंत सौ-सौ रुपए के आठ नोट उसकी हथेली पर रख दिए थे।

इतने सारे रुपयों को एक साथ देखकर वनवासी भविष्य के स्वप्नलोक में खो गया था। माखनलाल ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा था—"कला की दुनिया में पैसे की कोई कमी नहीं है, बस कलाकार अच्छा होना चाहिए, उसकी कला अच्छी होनी चाहिए, जिसे सभी पसंद करे। अभी तुम इतना रख लो। जब तुम अपनी बेटी को लेकर कलकत्ता आओगे और वह तीन महीने में नाच सीख कर जब मंच पर उतरेगी तो इससे दुगुना पैसे हर महीने मिलेंगे। अगर उसे अपने अच्छे प्रदर्शन के लिए मेडल अथवा पुरस्कार मिला तो वह भी तुम्हारा ही होगा।"

वनवासी कुछ बोल नहीं पा रहा था। बस केवल श्रोता बनकर रह गया था। अपने सामने वनवासी जैसे विश्वासी श्रोता देखकर माखनलाल ने पुनः कहना प्रारम्भ किया था—"देखो, स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सरकार ने हजारों किस्म की योजनाएँ चलाई है। उन्हीं में यह भी एक है। कला और संस्कृति का उत्थान भी हमारी सरकार के दायित्व के अन्तर्गत ही आता है। अब हमारी सरकार यह अच्छी तरह समझ गई है कि स्त्री जाति के उत्थान के बिना देश की उन्नति नहीं हो सकती है। कल्चरल डेपलपमेंट के वगैर दुनिया में हमारी पहचान केसे बनेगी? इसलिए होनहार लड़कियों को नृत्य-संगीत की ट्रेनिंग देने के लिए कलकत्ता में अनेक नाच घर खोले गए हैं। गाँव की लड़कियों को नृत्य-संगीत सिखाकर उनके भविष्य को सुधारना है। इसलिए तुम अपनी बेटी को लाकर नाचघर में भर्ती करा दो।"

बचपन से ही रेवती को नाचने-गाने का शौक था। ओपेरा अथवा जात्रा देखने के बाद वह जब घर लौटती थी तो अपने आप तरह-तरह के अभिनय करने की कोशिश करती थी। कभी यशोदा बनकर कन्हैया को माखन खिलाती तो कभी राधा बनकर कृष्ण के साथ रास रचाती। कभी महिमामई दुर्गा बन जाती तो कभी नर्तकी बनकर नाचने लगती।

इसलिए उसके बाबा ने जब नाच सीखने के लिए कलकत्ता जाने की बात

की तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मन ही मन अपने भविष्य के सुनहरे सपने बुनने लगी। जिस समय वह ट्रेन में चढ़ी थी उसकी धड़कन गाड़ी की गति की तरह ही बढ़ती गई थी।.....

धीरे-धीरे बस खाली होती जा रही थी। लोग उतर-उतर कर अपने-अपने घर की ओर भागे जा रहे थे। खिड़की के बाहर का अँधेरा भी धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। रेवती ने धीरे से कहा—"बाबा!"

"क्या हुआ?"

"..."

रेवती के कुछ नहीं बोलने पर वनवासी ने पूछा—"क्या फिर से भूख लग गई?"

"नहीं बाबा!"

"बाबा, मुझे बहुत डर लगता है। चलिए हम लोग घर लौट चलें।"

"क्यों लौट चलें? आखिर बात क्या है, जो तुम यहाँ तक आकर घर लौट चलने के लिए कह रही हो?"—वनवासी ने ऊँची आवाज में कहा।

"मुझे यह शहर बड़ा डरावना लगता है। मैं यहाँ अकेली नहीं रह पाऊँगी।"

वनवासी रेवती की बातें सुनकर कुछ समझ नहीं पा रहा था कि वह उस पर खफा हो अथवा उसे सांत्वना दे। उसके चेहरे पर उभरी हुई दहशत की रेखाओं को कैसे मिटाए वह? आखिर यह अनजाना डर उसके दिल में अचानक क्यों समा गया?...

वनवासी को लगा, भय तो उसके मन में भी उठा था; आशंका तो उसको भी हुई थी और संदेह तो उसके मस्तिष्क में भी पनपे थे कि कलकत्ता जैसे शहर में वह अपनी बेटी को अकेला कैसे छोड़कर चला जाएगा, किन्तु भूख, अभाव और गरीबी की मार ने उसकी सोच का गला घोंट दिया था। पैसे के लोभ ने उसे बेटी के साथ कलकत्ता आने के लिए मजबूर कर दिया था।.....

"सतीनाथ लेन.....सतीनाथ लेन....."—अचानक बस कंडक्टर की आवाज से वनवासी का ध्यान टूटा। वह हड़बड़ा कर बेटी का हाथ खींचते हुए नीचे उतर गया।

वस्तुतः उसे लग रहा थ कि वह अपने आपको खींच रहा हो अपने भीतर। उसके मन के भीतर शंका, उत्तेजना, विभ्रम और अनिश्चितता के कुहरे के भीतर आलोक की हल्की छटा दिखलाई पड़ी थी। मानों कोई उसके भीतर बैठा हुआ सवाल कर रहा हो—"वाह, क्या सचमुच तुम पहले से कुछ नहीं जानते थे? अरे, तुम सब जानते थे, बिल्कुल सही-सही अनुमान लगा पा रहे थे; तो फिर अब क्यों पीछे कदम खींच रहे हो।"

जिस तरह कोई अनिच्छा के बावजूद कुछ करने के लिए कृतसंकल्प होता है, उसी प्रकार वह रेवती का हाथ पकड़कर खींचता हुआ आगे बढ़ा। रेवती को अब उसके चारों ओर आश्चर्यजनक अभिनयभूमि और कल्पना से भी ज्यादा अविश्वास योग्य सत्ता दिखलाई नहीं पड़ रही थी। लगा वह भी जैसे उस परिस्थिति से मुखातिब

होने के लिए प्रस्तुत हो गई हो!.....

अत्यन्त संकीर्ण अंधकारपूर्ण होने के बावजूद सतीनाथ लेन में छम-छम की मधुर ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। उस नीम अँधेरे में भी वनवासी को 78बी नम्बर का मकान ढूँढने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई।

सामनेवाले चौड़े बरामदे पर लुंगी पहने एक मोटा-सा आदमी बैठा था। अन्धेरे में एक अपरिचित आदमी को देखकर वह गरजा—"के आछे? की चाय? (कौन है? क्या चाहिए?)"

शायद उसके बाद उसने आगन्तुम को पहचान लिया। दूसरे ही क्षण खड़ा होकर बोला—"कौन, वनवासी? ओह, तो तुम आ ही गए!....."

माखनलाल ने कनखी से उसके साथ आई लड़की को भी देखा—"ओह, तो लड़की को भी साथ लाए हो। अच्छा है, आओ, अन्दर आ जाओ।"

उसके बाद उसने भीतर की ओर मुँह करके आवाज लगाई—"शम्भू दादा! एखाने आसुन। एकटा नूतन आर्टिस्ट एसेछे। (शम्भू दादा, यहाँ आइए! एक नई कलाकार आई है।)"

तत्पश्चात माखनलाल ने वनवासी की ओर मुखातिब होकर कहा—"अरे वनवासी! तुम खड़े क्यों हो? बैठो न।"

वनवासी समझ ही नहीं पा रहा था कि आखिर वह कहाँ बैठे—बरामदे में पड़े बेंच पर, तेल से चिप-चिप चटाई पर अथवा सीढ़ी के पायदान पर। निर्णय न ले पाने के कारण ही वह चुपचाप खड़ा था।

तभी घर के अन्दर से काली-मोटी मूँछों वाला एक मोटा-तगड़ा आदमी हाथ में टार्च पकड़े बीड़ी का धुआँ उड़ाता हुआ निकला और माखनलाल से बोला—"क्या हुआ माखन!"

"शम्भू दादा, मैंने आप को कालाहाँडी के जिस कलाकार के बारे में बताया था, यह वही है।"

उस हल्के अँधेरे में शम्भू दादा ने रेवती को नीचे से ऊपर तक अच्छी तरह देखकर कहा—"यही है!"

उसके नाक-भौंह सिकोड़कर कहने के अन्दाज से यही लग रहा था कि लड़की उसे पसंद नहीं आई।

वनवासी शम्भू का चेहरा देखकर निराश हो उठा। उसे लगा, उसका किया कराया सब बेकार चला गया। इतनी दूर से कितनी आशा लिए वह यहाँ तक पहुँचा है और इसने तो एक शब्द में सब समाप्त कर दिया। उसका कण्ठ सूखने लगा।

"अच्छी आर्टिस्ट है, बिल्कुल नई आर्टिस्ट। अभी इतने लम्बे सफर को तय करके आई है इसीलिए..... ।" माखनलाल कुछ रटे-रटाए वाक्यों को दुहराए जा रहा था।

"उम्र कितनी है?"

"सोलह साल।"

"सोलह साल!"—शम्भू ने आश्चर्य से पूछा।

माखनलाल ने टार्च जलाकर रेवती का चेहरा देखना चाहा, किन्तु वह अपना चेहरा झुकाकर खड़ी थी, इसलिए मुखड़ा ठीक से दिखलाई नहीं पड़ा। उसके बाद टार्च की रोशनी लड़की की छाती, जांघ, कमर आदि विभिन्न अंगों में कुछ तलाशने लगी।

"नहीं, यह सोलह साल की नहीं। बाहर या तेरह साल की होगी।"—शम्भू ने अपना निर्णय सुनाया।

"नहीं.....नहीं....., गाँव के गरीब घर की लड़की है, इसीलिए ऐसी लगती है। पन्द्रह से कम की तो हो ही नहीं सकती। यहाँ खाने-पीने की सुविधा होगी तो चार-छह महीने में रूप निखर आएगा। फिर आप कहिएगा।"—माखनलाल ने अपने पक्ष को मजबूत करने की कोशिश की।

"छह महीने? सर्वनाश!! इतने दिनों तक कौन इन्तजार करेगा? तुम तो देख रहे हो कि आजकल आमदनी कितनी कम हो गई है। ऐसे में हमारा काम कैसे चलेगा?" शम्भू ने खफा होकर कहा।

शम्भू दादा को लगा कि इसी आर्टिस्ट के लिए माखनलाल एक साल पहले एडवाँस दे आया था। उसकी मूर्खता पर मन ही मन क्रोधित होते हुए शम्भू ने रेवती की ओर देखकर कहा—"ए लड़की! इधर आ।"

अन्दर और बाहर से बुरी तरह डरी हुई रेवती चुपचाप उस ओर बढ़ गई। उसे सिर उठाकर बाबा की ओर देखने का भी साहस नहीं हो रहा था।

जब रेवती शम्भू के सामने खड़ी हो गई तो वह गरज उठा—"खोल, अपनी फ्रॉक खोल कर दिखा।"

माखनलाल ने फुसफुसाकर कहा—"शम्भू दादा,यह आप क्या कर रहे हैं? उसका बाप यहीं खड़ा है।"

शम्भू दादा ने नजरें उठा कर उसकी ओर देखा—उसका बाप अब तक सीढ़ी के पासवाले खम्भे को पकड़कर चुपचाप खड़ा था।

"हाँ, यही है वनवासी, नई आर्टिट के बाबा।"—माखनलाल ने कहा।

"अच्छा, उसके आने-जाने का सारा खर्च दे दिया गया है तो?"—शम्भू दादा ने माखनलाल से पूछा।

"जी हाँ।"

"तो फिर यहाँ क्यों खड़ा है? उसे कहो वह जाए।" माखनलाल के आदेश देने के बाद शम्भू दादा ने मुड़कर रेवती को डाँटा—"क्यों, खोला तूने फ्रॉक? नहीं...नहीं...यहाँ तो अँधेरा है; यहाँ क्या दिखेगा? चल, घर के भीतर चल।"

रेवती मन्त्रमुग्ध-सी धीरे-धीरे उसके पीछे-पीछे घर के अन्दर चली गई। घर के भीतर घुसने के पहले उसने मुड़कर एक बार अपने बाबा को देखा। उसकी दृष्टि में वैसी ही मायूसी थी, जैसी कसाई के हाथ में डोरी पकड़ाते समय अपने मालिक के प्रति गाय की होती है। दरवाजे का चौखट पार करते ही रेवती को लगा कि अब वह तेरह वर्ष की बालिका नहीं है। उसकी आँखों में अब रबड़ की गुड़िया, चिड़ियाखाने के पशु-पक्षी और चुटकी भर अँचार की अभिलाषा नहीं थी। वह तो अब एक औरत हो गई थी, जिसके खेलने की दुनिया अलग है, चाहत की चीजें भिन्न हैं। अब उसकी उम्र जानने की किसी को जरुरत नहीं होगी क्योंकि औरत का अहसास होते ही वह अच्छी तरह समझ गई थी कि अँधेरे कमरे के भीतर एक लौलुप भविष्य किस तरह उसके ऊपर झपट्टा मारने के लिए तैयार बैठा है। रेवती की आँखों में अब कोई डर नहीं था। इसलिए उसके शरीर में अब पहले वाली कँपकँपी भी नहीं थी। उसने अनजाने में ही उस दुनिया को माफी दे दी जिसमें सब कुछ मौजूद है, किन्तु केवल उसका वजूद नहीं है। शायद कभी भी नहीं था!

□